वन पंचायतों की पीठ पर जे.एफ.एम. के घाव

उत्तरांचल में 1997 से संचालित की जा रही संयुक्त वन प्रबंधन परियोजना यानी कि जे.एफ.एम. की अवधि समाप्त हो गई है. विश्व बैंक के कर्ज से संचालित की गई इस योजना के परिणाम जानने के लिए कर्जदाता संस्था विश्व बैंक और उत्तरांचल सरकार विशेषज्ञों की अलग-अलग कमेटियाँ गठित कर रही हैं. संयुक्त वन प्रबंधन पर करीबी नजर रखे कई स्वतंत्र विश्लेषक और विशेषज्ञ भी इस कार्य में जुटे हैं. जे.एफ.एम. को लेकर किसी ठोस नतीजे पर पहुँचना अभी जल्दबाजी होगी, लेकिन संयुक्त वन प्रबंधन परियोजना के कर्ताधर्ता इस आरोप से बच नहीं सकते कि इस बहुप्रचारित योजना को उन्होंने सड़कों पर ही निपटा दिया. जबकि विश्व बैंक को भेजे ऋण प्रस्ताव के मसौदे में सरकार ने जे.एफ.एम. में वंचित समूहों के हितों का विशेष ध्यान रखने का वायदा किया था. जिन गांवों में यह कार्यक्रम संचालित किया गया, उनकी सूची पर नजर डालें तो 90 फीसदी गांव ऐसे हैं जो सड़कों से सटे हैं. राजनैतिक रूप से जागरूक हैं और शासन की प्रत्येक योजना में दूरस्थ क्षेत्रों का हिस्सा हड़पने में माहिर हैं. सड़क से जुड़े होने के कारण इन गांवों में आजीविका के नए साधन विकसित हो चुके हैं. वन संसाधनों की केन्द्रीय स्थिति इन गांवों के दैनिक जीवन में नहीं रह गई है. इसके विपरीत सड़क से 20-30 किमी. दूर के गाँवों में आजीविका का मुख्य साधन आज भी वन उत्पाद ही बने हुए हैं. ऐसे गांवों में निरन्तर बढ़ती जरूरतों और वन संसाधनों की आपूर्ति के बीच असंतुलन बढ़ता जा रहा है. जिसे पाटने के लिए संयुक्त वन प्रबंध परियोजना महत्वपूर्ण रोल अदा कर सकती थी. लेकिन योजना प्रक्रिया पर कब्जा जमाए बैठे योजनाकार, नेता और नौकरशाहों की राजनैतिक रूप से ताकतवर और जागरूक क्षेत्रों को ही योजनाएँ बाँटने की प्रवृत्ति ने ऐसा नहीं होने दिया.

हरियाली का आवरण बढ़ाने के साथ वनों को उत्पादकता से जोड़ने और इसके जरिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार करने जैसे अनेक लुभावने नारों के साथ विश्व बैंक से 650 करोड़ डालर कर्ज लेकर संयुक्त वन प्रबन्ध परियोजना अविभाजित उत्तर प्रदेश में 1997 में लागू की गई थी. उत्तर प्रदेश का ज्यादातर वन क्षेत्र उत्तराखण्ड क्षेत्र में ही था इसलिए उत्तराखण्ड में सघन रूप से यह योजना आरम्भ हुई. अलग राज्य बन जाने के बाद उत्तरांचल सरकार ने 2002 में नई नियमावली बना कर इस योजना को संचालित किया.

इससे पूर्व वन विभाग और वन पंचायतें अलग-अलग वनों का संरक्षण और संचालन कर रहे थे. वन विभाग सरकारी वनों का इकलौता वारिस था और वन पंचायतें अपनी जरूरतों की आपूर्ति के लिए पंचायती वनों का संरक्षण कर रही थीं. अनेक गांव ऐसे भी थे जिनके पास वन पंचायतें नहीं थीं. इसलिए जनता और वन विभाग द्वारा संयुक्त रूप से नए वनों का निर्माण और पुराने वनों का संरक्षण करने के लिए संयुक्त वन प्रबन्ध का प्रयोग आरम्भ किया गया था. नए वनों निर्माण के आधार पर जे.एफ.एम. का मूल्यांकन किया जाय तो यह योजना पूरी तरह असफल करार दी जा सकती है. वन विभाग ने ज्यादातर ऐसे वनों का चुनाव

किस्साए जे.एफ.एम. : परबड़ा

परबड़ा की वन पंचायत का गठन 22 अक्टूबर, 1932 को हुआ था. गांव के बुजुर्गों ने नौ तोकों में बसी 308 जनसंख्या की जरूरतें पूरी करने के लिए 285 हेक्टेएअर क्षेत्र को शामिल कर इस पंचायत का गठन किया था. 64 वर्षों तक गांववासियों ने वन पंचायत का सफलतापूर्वक संचालन किया. इस अवधि में उन्होंने वनौपज के उपयोग और वन क्षेत्र के संरक्षण के लिए आपसी सहमति से अनेक नियम बना कर अपनी वनों पर निर्भर आजीविका और हरियाली के बीच उल्लेखनीय संतुलन स्थापित किया. 1995 में भागीरथी देवी को वन पंचायत का सरपंच चुना गया. उन्होंने रात-दिन मेहनत कर अपना दायित्व निभाया. लेकिन 1998 में ग्रामीणों की 64 वर्षों की यह मेहनत परबड़ा को 'संयुक्त वन प्रबन्ध परियोजना' के लिए चुने जाने के दिन एक झटके में बरबाद हो गई. परबड़ा में जे.एफ.एम. से विवादों का ऐसा नाता जुड़ा कि योजना के समाप्त हो जाने के बाद भी गांव वाले इन्हें भुगत रहे हैं. शासन के छोटे से नुमाइंदे से भी भय खाने वाले निपट ग्रामीण जिला न्यायालयों से लेकर उच्चतम न्यायालय तक में मुकदमे लड़ रहे हैं. गांव गुटों में बँट गया है. हर गुट एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने का आदी हो गया है. गांव में कई बार अप्रिय स्थितियां घट चुकी हैं. जे.एफ.एम. समाप्त हो जाने के बाद जब से वन पंचायत अपने पुराने स्वरूप में लौटी है, ग्रामीण अब एक दूसरे के निकट आकर पुराने दिन लौटाने का प्रयास कर रहे हैं.

परबड़ा वन पंचायत को 1998 में जे.एफ.एम.के अन्तर्गत लिया गया. वन पंचायत सरपंच भागीरथी देवी की अध्यक्षता में ग्राम वन समिति का गठन करने के बाद जब वन क्षेत्र में वृक्षारोपण कर पशुओं की मुक्त चराई पर रोक लगायी गई तो गांव में विवाद पैदा हो गया. जे.एफ.एम. के बारे में जानकारी न होने के कारण भागीरथी देवी पर वन पंचायत का जंगल वन विभाग के हाथ बेच देने के आरोप लगने लगे. वन विभाग के रैंजर ने जब वन क्षेत्र से घास और लकड़ी लाने का शुल्क 300 रुपया निर्धारित करने का फरमान सुनाया तो ग्रामीणों का शक यकीन में बदल गया. वे खुलेआम विरोध पर उतर आए. गाँव के पूर्व उप प्रधान लक्ष्मणसिंह बिष्ट बताते हैं कि जे.एफ.एम. लागू करने का निर्णय गांव की सहमति के बिना लिया गया था और ग्राम वन समिति के गठन के लिए बुलाई गई बैठक निर्धारित समय से दो दिन पहले बुलाकर ग्राम वन समिति गठित कर दी गई.

वन पंचायत सरपंच के रूप में भागीरथी देवी का कार्यकाल वर्ष 2000 में समाप्त हो जाना था परन्तु वन पंचायत को संयुक्त वन प्रबंध में विलीन कर उन्हें पांच वर्ष के लिए ग्राम वन समिति का अध्यक्ष बना दिया गया. गांव वालों ने इसका विरोध कर पंचायत का चुनाव करने की माँग की और चुनाव कर भी लिया गया. लेकिन भागीरथी देवी इस चुनाव के विरुद्ध अदालत चली गई. यहीं से अदालती लड़ाइयों का सिलसिला शुरू हो गया. भागीरथी देवी इस मामले को उच्चतम न्यायालय तक लेकर गई. मुकदमेबाजी के कारण गांव में रोज नए मामले उठने लगे. परबड़ा निवासी डूँगर बताते हैं कि एक दूसरे पर केस दर्ज करने की होड़ मच गई. खुद डूँगर सिंह पर 9 आपराधिक मामले दर्ज किए गए. एक अन्य ग्रामीण जो जे.एफ.एम. का विरोध कर रहा था उस पर 5 मामले दर्ज हुए. गांव वाले बताते हैं कि गांव में जातीय तनाव जैसी भी कोई बात नहीं थी. यहाँ केवल ठाकुर और हरिजन दो जातियों के लोग रहते हैं और हरिजन इस पूरी सीन में कहीं नहीं थे. डूँगर सिंह कहते हैं यदि वन विभाग और सरकारी मशीनरी ने भागीरथी देवी को नहीं भड़काया होता तो यह नौबत नहीं आती. अन्य गांवों की तरह परबड़ा में भी संयुक्त वन प्रबंध चलता. इस विवाद के चलते परबड़ा में न जंगल का विकास हुआ और न ही योजना का पूरा बजट गांव को मिल पाया.

गांव में योजना को लागू करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों को योजना के पक्ष में वातावरण निर्माण की जिम्मेदारी सौंपी गई थी लेकिन आपसी विवादों को सुलझाने का कार्य वे भी नहीं कर सके. खाली भूमि पर लगाए गए पेड़ों की सुरक्षा के लिए बनायी गई दीवार ग्रामीणों ने ढहा दी और पशुओं को वहाँ चरने के लिए छोड़ दिया. केवल गांव के जलस्रोत वाले 10 हेक्टेएअर भाग में की गई घेराबंदी और वृक्षारोपण बचा रहा जो गांव के जलस्रोत के पानी की मात्रा बनी रहने के लिए दोनों पक्षों के लिए समान महत्व का था.

जे.एफ.एम. समाप्त होने के बाद ग्राम वन समिति को वन पंचायत में विलीन कर दिया गया है और दोबारा पंचायती नियमों के तहत वन क्षेत्र का उपयोग और संरक्षण किया जाने लगा है. संयुक्त वन प्रबंध योजना के दौरान वन क्षेत्र की चौकीदारी के लिए 26 महिलाओं को चौकीदार नियुक्त किया गया था. अब केवल दो चौकीदार वन क्षेत्र की देखभाल करते हैं जिनका वेतन प्रति परिवार 10 रुपया महीने के हिसाब से चुकाया जा रहा है. डूँगर सिंह कहते हैं वन पंचायत के वापस आने के बाद अब गांव वालों को किसी से कोई शिकायत नहीं रह गई. जो केस विभिन्न अदालतों में चल रहे हैं उन्हें भी राजीनामे के द्वारा सुलझाने का प्रयास किया जा रहा है. आशा है कि यह प्रयास सफल हो जायेंगे.

जे.एफ.एम. के लिए किया जहाँ पहले से अच्छे जंगल थे और वन पंचायतें उनका कुशलतापूर्वक प्रबंधन कर रही थीं.

कुमाऊँ मंडल के प्रमुख वन संरक्षक के.एल. आर्य बताते हैं कि कुमाऊँ के 1237 गांवों में संयुक्त वन प्रबंध परियोजना लागू की गई. वे यह मानते हैं कि दूरस्थ क्षेत्रों की अपेक्षा यातायात आदि सुविधाओं की मौजूदगी वाले क्षेत्रों में ही इसे लागू किया गया. पर इसे पक्षपात न मानते हुए वे कहते हैं,''यह योजना केवल पाँच वर्ष के लिए ही थी. दूरस्थ क्षेत्रों में इसे लागू करने की स्थिति में योजना को समय पर पूरा कर पाना संभव नहीं होता.'' वे यह भी मानते हैं कि संयुक्त वन प्रबंध जैसी बहुउद्देश्यीय परियोजना के लक्ष्य केवल पाँच वर्ष में हासिल कर पाना नामुमकिन है लेकिन इस योजना ने वन विभाग और जनता के बीच पुल बनाने और एक दूसरे की अच्छाई सीखने और बुराई को चिन्हित करने की नींव रख दी है जिसके दूरगामी परिणाम सरकार की वन नीति और ग्रामीणों के दृष्टिकोण में परिवर्तन के रूप में अवश्य दिखाई देंगे.

योजना की अवधि पूरी हो जाने के बाद जो दृश्य सामने आया है उसने अनेक भ्रमों को तोड़ने का काम किया है. मसलन संयुक्त वन प्रबंधन में शामिल होने वाली वन पंचायतों का पांच वर्ष बाद क्या होगा?

इसे लेकर काफी ऊहापोह की स्थिति थी. ऐसा मानने वाले कम नहीं थे कि इस योजना से वन पंचायतों का मौजूदा स्वरूप समाप्त हो जनता के पाले-पोसे जंगल विश्व बैंक के हो जायेंगे. ऐसा कुछ नहीं हुआ. इस योजना के अन्तर्गत गठित हुई ग्राम वन समितियाँ दोबारा वन पंचायतों के रूप में पुनर्जीवित होकर वन पंचायत नियमावली से संचालित हो रही हैं. जो समितियाँ पूर्व में वन पंचायत नहीं थीं, वे चाहें तो मौजूदा स्थिति में ही रह सकती हैं पर उन्हें अपने वन क्षेत्र का प्रबंध अकेले ही करना होगा. संयुक्त वन प्रबंध लागू के पीछे योजनाकारों का यह सोच कि इस योजना के लागू हो जाने के बाद ग्रामीण वन विभाग की तर्ज पर 'वैज्ञानिक प्रबंधन' करने लगेंगे और पंचायती वनों पर वन विभाग का अप्रत्यक्ष ही सही नियंत्रण स्वीकार कर लेंगे, गलत साबित हुआ है. ग्राम वन के विकास के लिए माइक्रोप्लान का निर्माण जे.एफ.एम. के दौरान भी कागजी खानापूर्ति की तरह लिया गया था. योजना के समाप्त हो जाने के बाद यह कागजी कार्यवाही भी संभव नहीं रह गई है.

वन विभाग द्वारा धन का लालच दिखाकर वन पंचायतों को संयुक्त वन प्रबंध योजना में शामिल होने का आमंत्रण दिया गया था. ज्यादातर पंचायतों ने हाथों-हाथ इस परियोजना को लिया. जिसका अर्थ योजनाकारों ने यह लगाया कि वन पंचायतें वन विभाग के अधीन काम करने को तत्पर हैं. और उन्होंने पिछले 70 सालों से जनतांत्रिक ढंग से ग्रामीणों द्वारा संचालित की जा रही पंचायतें 2001 में वन विभाग के अधीन कर दी. सरकार के इस कदम का राज्य भर में भारी विरोध हुआ. राजनैतिक दलों को अपने नई नियमावली को समाप्त करने या इसे संशोधित करने का वादा अपने राजनैतिक कार्यक्रम में शामिल करना पड़ा. वन पंचायत नियमावली में कुछ संशोधन कर दिए गए हैं लेकिन वन विभाग का वर्चस्व अब भी बना हुआ है इसलिए सरकार और वन पंचायतों के बीच सहमति नहीं आज दिन तक नहीं बन सकी है.

संयुक्त वन प्रबंध परियोजना के अन्तर्गत वनों के प्रबंधन और संरक्षण के लिए पहली बार ग्रामीणों को धन दिया गया. ग्रामीण अपनी जरूरतों के अनुरूप अब तक इस कार्य को निःशुल्क रूप से करते आ रहे थे. इस कार्य में धन के शामिल होते ही अनेक किस्म के विवाद गांवों मे पैदा होने लगे जो धड़ेबाजी, जातिवाद और दबंगों की मनमानी के रूप में दिखाई देने लगी. त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था ने सामाजिक विघटन के जिन बीजों को रोपा था संयुक्त वन प्रबंध ने उन्हें पल्लवित करने का कार्य किया. ग्राम वन समितियों में या तो ग्राम पंचायत प्रधान की पसंद का व्यक्ति चुना गया या फिर गांव का कोई शक्तिशाली गुट ग्राम वन समिति पर काबिज हुआ. वनोत्पादों के उपभोक्ता जिनमें महिलाएँ और न्यून आय वर्ग के ग्रामीण शामिल थे, इस परियोजना से नहीं जोड़े गए. जिन्होंने निर्णय लिए उनका वन या उसके प्रबंधन से कोई नाता नहीं था और जिनका वनों से रोज का नाता है, उन्हें इस कार्य में भागीदार नहीं बनाया गया. संयुक्त वन प्रबंध ने वनों के प्रति ग्रामीणों के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर दिया है. ऐसा कहना अभी जल्दबाजी होगी लेकिन इस बार पिछले वर्षों की अपेक्षा ज्यादा संख्या में पंचायती वन आग का शिकार हुए हैं जो यह इंगित करता है कि पंचायती वनों में लगी आग को बुझाने में ग्रामीणों ने पहले जैसी तत्परता नहीं दिखाई. आरक्षित वनों से कोई लाभ न मिलने के कारण ग्रामीणों का ऐसे वनों के प्रति लगाव न होना आग के प्रमुख कारणों में गिनाया जाता है. वन पंचायत संघर्ष मोर्चा के संयोजक तरुण जोशी कहते हैं कि 'संयुक्त वन प्रबंध परियोजना वाली जिन पंचायती वनों में आग लगी, गांव वाले बुझाने नहीं गए. ग्रामीणों ने आरक्षित वनों की तरह संयुक्त वनों की आग बुझाना भी वन विभाग का कार्य मान लिया है. जे.एफ.एम. के अन्तर्गत आग बुझाने के लिए दिया जाने वाला मानदेय, परियोजना की अवधि समाप्त हो जाने के कारण न दिए जाने से ग्रामीण वनों की आग के प्रति उदासीन हो गए हैं.'

☐ पूरन बिष्ट

(सी.एस.ई. मीडिया फैलोशिप के अन्तर्गत तैयार आलेख)

१ अगस्त २००३

सुन्दरखाल जे.एफ.एम. लागू करने वाला उत्तरांचल का पहला गांव बना. 1932 में बनी सुन्दरखाल और 1952 में गठित हुई सलियाकोट मल्ला की वन पंचायत को मिलाकर यह योजना संचालित की. वन पंचायत के अलावा वन विभाग ने 60 हेक्टेयर रिजर्व वन क्षेत्र भी संयुक्त वन प्रबंध योजना के अन्तर्गत शामिल किया गया. सुन्दरखाल के लोगों के पास जे.एफ.एम. से जुड़ी कड़वी यादें नहीं हैं लेकिन इस बहुप्रचारित योजना के अन्तर्गत गांव में वन क्षेत्र के विकास में कोई उल्लेखनीय काम हुआ हो, ऐसा नहीं दिखाई पड़ता. केवल एक छोटा सा पैच बांज वन का जरूर विकसित हो रहा है, जो पर्याप्त देख-रेख के अभाव में पशुओं की खुली चराई का केन्द्र बना हुआ है. सुन्दरखाल में वन विभाग ने जो 60 हेक्टेयर रिजर्व वन जे.एफ.एम. के अन्तर्गत लिया था, योजना की अवधि पूरी होने पर अपने नियंत्रण में ले लिया है. जे.एफ.एम. लागू करने वाले ग्राम वन समिति के पूर्व अध्यक्ष चतुर सिंह बताते हैं कि 'हमने सोचा था कि पांच साल पूरे होने के बाद रिजर्व का यह क्षेत्र हमारी पंचायत के अधीन आ जायेगा. यह मान कर हमने इस क्षेत्र की खूब देखभाल की, वृक्षारोपण किया. लेकिन योजना पूरी होते ही वन विभाग ने यह वन क्षेत्र अपने कब्जे में लेकर गांव वालों की वन क्षेत्र में आवाजाही पर प्रतिबंध लगा दिया है.'

नैनीताल समाचार (पाक्षिक)